COURSE NAME – M.Ed 1ST SEMESTER

SUBJECT NAME & CODE
PSYCHOLOGY OF LEARNING & DEVELOPMENT

(C.C.1)

विकास की प्रकृति और इसके निर्धारक

सभी जीवित प्राणियों के अभिलक्षणों में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है 'परिवर्तन'। गर्भ धारण से लेकर मृत्यु की जीवनावधि के सम्पूर्ण विस्तार में मानव जीवन में हुये परिवर्तनों पर यदि हम दृष्टि डालें, तो यह परिवर्तन अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं। अजन्मे शिशु से लेकर वयस्क होने तक और तत्पश्चात् वृद्धावस्था तक की मानव–यात्रा बहुत ही रोचक है। यहाँ तक कि अपने चहुँ ओर के मानवीय जीवन पर सामान्य दृष्टि डालने से ही आप स्पष्टतया यह जान जायेंगे कि हमारे शरीरों और मनोवैज्ञानिक क्रियाकलापों में प्रतिदिन अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ परिवर्तन सुस्पष्ट होते हैं जबकि कुछ परिवर्तनों को तत्काल अथवा सुस्पष्ट रूप से देख पाना संभव नहीं होता। इनमें से कुछ परिवर्तनों का निर्धारण अधिकांशतः आनुवंशिकी द्वारा अथवा जेनेटिक घटकों द्वारा अधिक होता है, जबकि कुछ परिवर्तन अधिकतर परिवेशीय और सांस्कृतिक घटकों पर आधारित होते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के विकास के लिए विभिन्न लक्ष्य रखती हैं और वे अपने बच्चों के पालन–पोषण में विभिन्न रणनीतियों का प्रयोग करती हैं। व्यक्तियों के सर्वोत्तम संभावित विकास में सहायता के लिए, सम्पूर्ण जीवनावधि के दौरान विकास की प्रकृति और प्रक्रिया को समझना बहुत महत्वपूर्ण है।

क) "विकास" की संकल्पना

"विकास" शब्द का प्रयोग प्रायः उस गतिक प्रक्रिया को प्रतिरूपित करने के लिए किया जाता है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति बढ़ता है और अपने सम्पूर्ण जीवन–काल में परिवर्तित होता रहता है। साधारणतया हम सोचते हैं कि यह गुणात्मक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो गर्भ–धारण से लेकर मृत्यु–पर्यन्त निरंतर होती रहती है। इस प्रकार विकास एक व्यापक शब्द है और उन सभी क्षेत्रों से संबद्ध है जिनमें भौतिक, गतिक, संज्ञानात्मक, दैहिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यक्तित्व संबंधी क्षेत्र समाहित हैं। उल्लेखनीय है कि इन सभी क्षेत्रों में हुये विकास परस्पर संबंधित हैं। उदाहरणतया, एक 13 वर्षीय लड़की के शरीर में शारीरिक और जैविक परिवर्तन होते हैं और इन परिवर्तनों, के साथ ही उसके मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास से भी संबंधित होते हैं।

जीवन का प्रारंभः गर्भधारण के उस क्षण से होता है जब माता के अण्डाणु का पिता के शुक्राणु के साथ निषेचन होता है और एक नये मानव जीव का सृजन होता है। उस क्षण से लेकर मृत्यु पर्यन्त व्यक्ति में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। यह परिवर्तन अचानक नहीं होते अपितु नियमित और प्रायः एक पैटर्न के अनुरूप होते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि विकासात्मक परिवर्तन सदैव वृद्धि संबंधी अथवा विकासमूलक नहीं होते। इनमें क्रियात्मकता में कमी आना भी सन्निहित है जिसे "अन्तर्वलयन" (इन्वॉल्यूशन") कहते हैं। एक बच्चा विकास की प्रक्रिया में अपने दूध के दांत खो देता है, जबकि एक वृद्ध व्यक्ति की स्मृति और शारीरिक क्रियात्मकता में कमी देखने में आती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि सबसे अच्छा यही है कि विकास को हम पाने–खोने की प्रक्रिया के रूप में समझें जिसमें नये–नये और विभिन्न प्रकार के परिवर्तन घटित होते रहते हैं। पुराने व्यवहार पैटर्नों में उनकी विशिष्टता (प्रभावोत्पादकता), समाप्त भी हो सकती है, जबकि नये परिवर्तन उभर सकते हैं।

संस्कृति के संदर्भ में विकासः प्रकृति और पालन–पोषण दोनों के संयुक्त प्रभाव से ही विकास आकार लेता है। प्रकृति, बच्चे में उस आनुवंशिक योगदान की ओर संकेत करती है, जो उसे गर्भ धारण के समय अपने माता–पिता से प्राप्त होता है। जेनेटिक्स व्यक्ति के शारीरिक ढांचे और क्रियात्मकता के कुछ पक्षों को निर्धारित करने के साथ–साथ कुछ सीमा तक मनोवैज्ञानिक अभिलक्षणों को भी निर्धारित करता है। पालन–पोषण उन जटिल शारीरिक और सामाजिक परिवेश के प्रभावों की ओर इंगित करता है जिसमें हम विकसित और बड़े होते हैं। बालक के परिवेश के विविध पक्ष, (जैसे भौतिक सुविधाएँ, सामाजिक संस्थायें और धार्मिक अनुष्ठान, और स्कूल) विकासात्मक परिणामों पर बहुत ही महत्वपूर्ण तरीके से प्रभाव डालते हैं।

ख) मूल विकासात्मक संकल्पनाएं

"विकास" को हम **"वृद्धि" ("ग्रोथ")** और **"परिपक्वता" ("मैच्योरेशन")** के साथ परस्पर परिवर्तनीय शब्द के रूप में प्रयोग करते हैं, परन्तु इन शब्दों में बहुत ही सावधानीपूर्वक विभेद की आवश्यकता है।

"वृद्धि" ("ग्रोथ") शब्द का अर्थ प्रायः जैविक ढांचे में हुये मात्रात्मक जुड़ाव अथवा परिवर्तनों के लिये दिया जाता है। उदाहरणतया जैसे–जैसे हम बड़े होते हैं, शरीर का आकार, कद, वजन, हमारे शरीर के अंगों का अनुपात इस प्रकार परिवर्तित होता है कि विविध तरीकों से इसे मापा जा सकता है, इसके साथ ही हमारी शब्दावली भी बढ़ती है। दूसरी और "विकास" एक व्यापक शब्द है जिसमें वृद्धि (ग्रोथ) शामिल हैं, परन्तु इसका अधिकांशतया प्रयोग संज्ञानात्मक योग्यता, प्रत्यक्षीकरण योग्यता, व्यक्तित्व और संवेगात्मक विकास और इसी प्रकार के क्रियात्मक और गुणात्मक परिवर्तनों के अर्थ में किया जाता है।

"परिपक्वता" शब्द का प्रयोग हम बढ़ती उम्र के साथ सामने आने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों के अर्थ में करते हैं, उदाहरणतया व्यक्ति के यौवनारम्भ की आयु पर पहुँचने वाले हार्मोन संबंधी परिवर्तन। इसका एक उदाहरण यह भी है कि जब कोई लड़की किशोरावस्था में पहुँचती है तो एस्ट्रोजन स्त्राव के प्रभाव से उसके स्तन विकसित होने लगते हैं। परिपक्तवा का अर्थ है वे परिवर्तन जो मूलतः जैविक प्रकृति के होते हैं और हमारे जेनेटिक प्रोग्राम के कारण अस्तित्व में आते हैं। हमारी जैविक रूपरेखा समय के साथ–साथ एक पूर्व–निर्धारित परिवर्तन–क्रम का अनुसरण करती है। इसका अवलोकन हम बचपन के दौरान दांतों के विकास में कर सकते हैं। आयु बढ़ने के साथ शरीर में हुये अनुपातिक परिवर्तनों में हम इस प्रकार की पूर्व निर्धारित सर्वव्यापी (यूनीवर्सल) प्रवृत्ति का उदाहरण देख सकते हें। मोटे तौर पर जन्म के समय सिर का आकार पूरे शरीर के आधे के बराबर होता है, परन्तु वयस्कता की आयु तक आते–आते यह अनुपात कम होता चला जाता है, तब इसका आकार सम्पूर्ण शरीर का एक चौथाई ही रह जाता है। इसलिए, हमारे शरीर में हुये परिपक्तवा संबंधी परिवर्तन, सीखने अथवा रोग होने या चोट लगने जैसे घटकों की अपेक्षा मूलतः उम्र बढ़ने की प्रक्रिया के कारण होते हैं।

उल्लेखनीय है कि व्यवहार में परिवर्तन सीखने (लर्निंग) के कारण भी घटित होते हैं। अपने परिवेश के साथ परस्पर अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति सीखता है। परिपक्वता, कच्चा माल उपलब्ध करवाती है और सीखने की प्रक्रिया की संभावना के घटित होने के लिए एक भूमि तैयार करती है। जैसे पढ़ना सीखने का उदाहरण देखें तो हमें पता लगेगा कि इसके लिये बालक का जैविक रूप से पढ़ने के लिए तैयार होना अनिवार्य है। इससे पहले कि बालक पढ़ना सीख सके उसके आंखों का विकास इतना अवश्य हो कि वे समुचित रूप से केन्द्रित किये जाने के लिए सक्षम हों। अतः परिपक्वता और सीखने की प्रक्रिया, संयुक्त रूप से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं।

"क्रमिक विकास" (इवोल्यूशन) वह शब्द है जिसके द्वारा हम किसी (जाति) में हुये विशिष्ट–परिवर्तनों की और संकेत करते हैं। क्रमिक विकास संबंधी परिवर्तन बहुत धीरे–धीरे होते हैं और एक पीढ़ी

से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किये जाते हैं ताकि उत्तरजीवन के लिए उस जाति के पास बेहतर साधन उपलब्ध रहें। वानरों के मानव बनने के विकास क्रम में लगभग 14 मिलियन वर्षों की अवधि लग गई। जाति के स्तर पर होने वाले परिवर्तनों को ('फाइलोजेनेटिक') जातिवृत्तिक और व्यक्ति के स्तर पर होने वाले परिवर्तनों को 'व्यक्तिवृत्तिक' (ऑनटूजेनेटिक) परिवर्तन कहते हैं। विकास–क्रम (इवोल्यूशन) शब्द का प्रयोग वृद्धिपरक परिवर्तनों के वर्णन के लिए भी किया जाता है, जो कि विकास की प्रक्रिया के दौरान होते हैं।

ग) विकास के अभिलक्षण

अब हम विकास के अभिलक्षणों की विशेषताओं को सारांश में प्रस्तुत कर सकते हैं ताकि हमें इन परिवर्तनों का अन्य प्रकार के परिवर्तनों से अन्तर स्पष्ट करने में सहायता मिल सके।

- विकास एक जीवन–पर्यन्त प्रक्रिया है, जो गर्भधारण से लेकर मृत्यु–पर्यन्त तक होती रहती है।
- विकासात्मक परिवर्तन प्रायः व्यवस्थापरक, प्रगत्यात्मक और नियमित होते हैं। सामान्य से विशिष्ट, और सरल से जटिल और एकीकृत से क्रियात्मक स्तरों की ओर अग्रसर होने के दौरान प्रायः यह एक पैटर्न का अनुसरण करते हैं।
- विकास बहु–आयामी होता, अर्थात् कुछ क्षेत्रों में यह बहुत तीव्र वृद्धि दर्शाता है, जबकि अन्य क्षेत्रों में इसमें कुछ कमियाँ देखने में आती हैं।
- विकासात्मक परिवर्तनों में प्रायः परिपक्वता में क्रियात्मकता के स्तर पर उच्च स्तरीय वृद्धि देखने में आती है, उदाहरणतया शब्दावली के आकार और जटिलता में वृद्धि। परन्तु इस प्रक्रिया में कोई कमी अथवा क्षति भी निहित हो सकती है, जैसे हड्डियों के घनत्व में कमी या वृद्धावस्था में स्मृति क्षीण होना।
- इसके अतिरिक्त वृद्धि और विकास, सदैव एक समान नहीं होता। विकास के पैटर्न में प्रायः सपाटता (प्लेटियस) भी देखने में आती है, जिसमें ऐसी अवधि का भी संकेत मिलता है जिसके दौरान कोई सुस्पष्ट सुधार देखने में नहीं आता।
- विकासात्मक परिवर्तन 'मात्रात्मक' हो सकते हैं, जैसे आयु बढ़ने के साथ कद बढ़ना, अथवा 'गुणात्मक', जैसे नैतिक मूल्यों का निर्माण।
- विकास की प्रक्रिया सतत के साथ साथ 'विछिन्न' अर्थात् दोनों प्रकार से हो सकती है। कुछ परिवर्तन तेजी से होते हैं और सुस्पष्ट रूप से दिखाई भी देते हैं जैसे पहला दाँत निकलना, जबकि कुछ परिवर्तनों को दिन प्रतिदिन की क्रियाओं में आसानी से देख पाना संभव नहीं होता क्योंकि वे अधिक प्रखर नहीं होते, जैसे व्याकरण को समझना।
- विकासात्मक परिवर्तन सापेक्षतया स्थिर होते हैं। मौसम, थकान अथवा अन्य आकस्मिक कारणों से होने वाले अस्थाई परिवर्तनों को विकास की श्रेणी में नहीं रख सकते।

- विकासात्मक परिवर्तन बहु–आयामी और परस्पर संबद्ध होते हैं। अनेक क्षेत्रों में यह परिवर्तन एक साथ एक ही समय पर हो सकते हैं, अथवा एक समय में एक भी हो सकता है। किशोरावस्था के दौरान शरीर के साथ–साथ संवेगात्मक, सामाजिक और संज्ञानात्मक क्रियात्मकता में भी तेजी से परिवर्तन दिखाई देते हैं।

- विकास बहुत ही लचीला होता है। इसका तात्पर्य है कि एक ही व्यक्ति अपनी पिछली विकास दर की तुलना में किसी विशिष्ट क्षेत्र में अपेक्षाकृत आकस्मिक रूप से अच्छा सुधार प्रदर्शित कर सकता है। एक अच्छा परिवेश शारीरिक शक्ति, अथवा स्मृति और बुद्धि के स्तर में अनापेक्षित सुधार ला सकता है।

- विकास प्रासंगिक हो सकता है। यह ऐतिहासिक, परिवेशीय और सामाजिक–सांस्कृतिक घटकों से प्रभावित हो सकता है। माता–पिता का देहांत, दुर्घटना, युद्ध, भूचाल और बच्चों के पालन–पोषण के रीति–रिवाज ऐसे घटकों के उदाहरण हैं जिनका विकास पर प्रभाव पड़ सकता है।

- विकासात्मक परिवर्तनों की दर अथवा गति में उल्लेखनीय 'व्यक्तिगत अन्तर' हो सकते हैं। यह अन्तर आनुवांशिक घटकों अथवा परिवेशीय प्रभावों के कारण हो सकते हैं। कुछ बच्चे अपनी आयु की तुलना में अत्यधिक पूर्व–चेतन हो सकते हैं, जबकि कुछ बच्चों में विकास की गति बहुत धीमी होती है। उदाहरणतया, यद्यपि एक औसत बच्चा 3 शब्दों के वाक्य 3 वर्ष की आयु में बोलना शुरू कर देता है, परन्तु कुछ ऐसे बच्चे भी हो सकते हैं जो 2 वर्ष के होने से बहुत पहले ही ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, जबकि कुछ ऐसे बच्चे भी हो सकते हें जो 4 वर्ष की आयु होने तक भी पूरा वाक्य बोलने में सक्षम नहीं हो पाते। इसके अतिरिक्त, कुछ बच्चे ऐसे भी हो सकते हैं जो अपनी आयु की उच्चतम सीमा से ऊपर जाकर भी बोलने में सक्षम होते हैं।